भारतीय भाषा और साहित्य में पंडित दीनदयाल उपाध्याय के विचारों की प्रासंगिकता

डॉ. नम्रता सिंह

भारत एक ऐसी सभ्यता है जिसकी आत्मा उसकी भाषाओं, बोलियों और सांस्कृतिक परंपराओं में बसती है। भाषिक विविधता भारत को केवल बहुभाषी देश नहीं बनाती, बल्कि उसे एक जीवंत, बहुपरत सांस्कृतिक इकाई के रूप में प्रतिष्ठित करती है। प्रत्येक भारतीय भाषा सदियों की ऐतिहासिक स्मृतियों, जीवनानुभवों, धार्मिक-दार्शनिक मान्यताओं, लोक-साहित्य, गीतों, सूक्तियों और सामाजिक अनुभवों की वाहक है। इन्हीं भाषाओं के माध्यम से भारत की सामूहिक चेतना, उसके मूल्य, उसकी परंपराएँ और उसकी पहचान पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होती आई हैं। इसीलिए जब भारतीय भाषा के भविष्य, उसकी स्वायत्तता, उसकी सांस्कृतिक भूमिका और उसके साहित्यिक दायित्व पर चर्चा होती है, तब पंडित दीनदयाल उपाध्याय के विचार अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाते हैं।

स्वतंत्रता के बाद भारत के भाषा-परिदृश्य में अनेक प्रकार की चुनौतियाँ उभरीं—अंग्रेज़ी का वर्चस्व, शिक्षा में मातृभाषा की उपेक्षा, ज्ञान-निर्माण में भारतीय भाषाओं की सीमित भूमिका, प्रशासनिक भाषा और जनता की भाषा के बीच बढ़ती दूरी, और साहित्य पर उपनिवेशी सोच का गहरा असर। ऐसे समय में उपाध्याय जी ने भाषाओं के संबंध में जो दृष्टि प्रस्तुत की, वह केवल भाषावैज्ञानिक विश्लेषण नहीं थी; वह भारत की आत्मा को समझने वाला सांस्कृतिक और दार्शनिक चिंतन था। वे भाषा को राष्ट्र की "जीवन-शक्ति" मानते थे—ऐसी शक्ति जो समाज को न केवल जोड़ती है, बल्कि उसे पहचान और स्वाभिमान भी प्रदान करती है। उनका यह कहना अत्यंत सार्थक था कि यदि शिक्षा, संवाद और साहित्य की भाषा जनमानस की भाषा से भिन्न हो जाए, तो राष्ट्र भीतर ही भीतर विभाजित हो जाता है। यह विचार मात्र सैद्धांतिक नहीं था; बल्कि समाजशास्त्रीय सत्य था, जिसके दुष्परिणाम आज भी शिक्षा-नीति, रोजगार, ज्ञान-उत्पादन और सामाजिक गतिशीलता में दिखाई देते हैं। उपाध्याय जी का मानना था कि भारतीय भाषाओं का विकास केवल सांस्कृतिक या भावनात्मक मुद्दा नहीं है, बल्कि यह भारत की बौद्धिक और मानसिक स्वतंत्रता से जुड़ा हुआ प्रश्न है। जब तक भारतीय भाषाएँ ज्ञान की भाषा नहीं बनेंगी, तब तक भारत बौद्धिक रूप से औपनिवेशिक प्रभावों से मुक्त नहीं हो सकता।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने भारतीय भाषाओं के महत्व को समझते हुए हिन्दी, संस्कृत और अन्य भारतीय भाषाओं के बीच प्राकृतिक संबंधों पर बल दिया। उनके अनुसार, भारतीय भाषाएँ एक ही सांस्कृतिक स्रोत से विकसित हुई हैं, और उनमें गहरी ऐतिहासिक एवं व्याकरणिक एकता है। वे भारतीय भाषाओं में 'प्रतिस्पर्धा' नहीं, बल्कि 'सहयोग' का संबंध स्थापित करने के पक्षधर थे। यह दृष्टिकोण आज के समय में और भी महत्वपूर्ण हो गया है, जब भाषाई राजनीति, पहचान और प्रशासनिक ढांचों में भाषा के प्रश्न जटिल होते जा रहे हैं।

आज जब भारत में नई शिक्षा नीति (NEP 2020), भारतीय ज्ञान परंपरा, मातृभाषा-आधारित शिक्षण, डिजिटल भाषाई सामग्री, और ज्ञान-लोकतंत्रीकरण पर व्यापक विमर्श चल रहा है, तब उपाध्याय जी के विचारों को पुनः पढ़ने और समझने की आवश्यकता और बढ़ गई है। उनकी भाषा-दृष्टि न केवल सांस्कृतिक पुनर्जागरण की राह दिखाती है, बल्कि भारतीयता की जड़ों से जुड़े ज्ञान-सृजन को भी नई दिशा देती है।

साहित्य समीक्षा: भारतीय भाषा-विचार और साहित्यिक परंपरा पर हुए विद्वानों के विमर्श से स्पष्ट होता है कि भाषा भारत की सांस्कृतिक संरचना का केंद्रीय तत्व है। भारतीय भाषाओं के विकास, उनकी आत्मा, उनके

साहित्यिक स्वरूप और उनकी सामाजिक भूमिका पर अनेक विद्वानों ने गहन विश्लेषण किया है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय का चिंतन इस समृद्ध परंपरा में एक विशिष्ट वैचारिक आयाम जोड़ता है। उनकी दृष्टि को व्यापक संदर्भ में समझने के लिए पूर्ववर्ती और समकालीन विद्वानों के विचारों का अध्ययन आवश्यक है।भारतीय भाषाओं पर अध्ययन के क्षेत्र में रामविलास शर्मा का योगदान विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। शर्मा ने भाषा को "जनजीवन का दस्तावेज़" कहा और यह स्पष्ट किया कि भाषा केवल व्याकरणिक प्रणाली नहीं, बल्कि समाज की स्मृतियों और संघर्षों का जीवंत रूप है। उनकी कृति *भारतीय भाषाओं का विकास* में यह स्थापित किया गया है कि भारतीय भाषाएँ सांस्कृतिक एकता के सूत्र में जुड़ी हैं। यह दृष्टिकोण उपाध्याय जी की इस मान्यता से मेल खाता है कि भारतीय भाषाएँ भारतीयता का आधार हैं और उनका परस्पर संबंध किसी राजनीतिक विभाजन से नहीं, बल्कि सांस्कृतिक समन्वय से परिभाषित होता है।

नामवर सिंह ने भारतीय भाषाओं की अंतर्संबद्धता पर जोर देते हुए कहा था कि भारतीय साहित्य को "एक समेकित साहित्य" के रूप में पढ़ा जाना चाहिए। उन्होंने हिन्दी साहित्य को भारतीय भाषाओं के व्यापक परिवार का अंग बताते हुए यह सिद्ध किया कि भारतीय भाषाओं की ऐतिहासिक और व्याकरणिक समानताएँ भारत की सांस्कृतिक निरंतरता का प्रमाण हैं। भाषा और साहित्य के सिद्धांतकार आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भाषा को 'जीवन-शक्ति' कहा। उनके अनुसार भाषा केवल बाहरी रूप नहीं, बल्कि मानव-समाज की आंतरिक चेतना का रूप है। यह दृष्टि उपाध्याय जी के विचारों से पूरी तरह मेल खाती है, जहाँ वे कहते हैं कि "यदि शिक्षा, साहित्य और संवाद की भाषा जनमानस की भाषा से भिन्न हो जाए, तो राष्ट्र की आत्मा भी विखंडित हो जाती है"| यह उपनिवेशोत्तर मानसिकता की आलोचना का आधार भी प्रदान करता है, जहाँ भाषा-प्रभुत्व को शक्ति-संबंधों से जोड़ा जाता है।

उपनिवेशोत्तर साहित्यिक सिद्धांतकारों, जैसे—फ्रांज़ फैनन, न्गुगी वा थ्योंगो और गायत्री चक्रवर्ती स्पिवाक—ने यह स्थापित किया कि भाषा उपनिवेशवाद का सबसे सूक्ष्म और सबसे प्रभावी उपकरण है। भारतीय शिक्षा और भाषा-नीति पर कांचा इलैया, मदन मोहन झा, और अरविंद कुमार ने भी गहन विश्लेषण किया है। वे सभी इस बात पर सहमत हैं कि मातृभाषा-आधारित शिक्षा ही सबसे प्रभावी और सर्वसमावेशी हो सकती है। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020) में मातृभाषा को शिक्षा की प्राथमिक भाषा के रूप में स्वीकार करना इसी धारणा का विस्तार है। यह उपाध्याय जी के उस विचार की पुष्टि करता है कि भारतीय भाषाओं में ज्ञान-निर्माण राष्ट्र की बौद्धिक स्वतंत्रता का मार्ग है। भाषा और साहित्य के लोकतांत्रिक विमर्श—जैसे दलित साहित्य, स्त्री साहित्य, आदिवासी साहित्य और लोक साहित्य—ने भारतीय समाज की विविधानुभूतियों को अभिव्यक्ति दी है। ये सभी धाराएँ उपाध्याय जी के "अंत्योदय" के सिद्धांत से मेल खाती हैं, जहाँ वे समाज के अंतिम व्यक्ति की आवाज़ को साहित्य में स्थान देने की वकालत करते हैं।

इसके अतिरिक्त, डिजिटल युग में भाषा पर हुए शोध—जैसे इंटरनेट भाषाविज्ञान, सोशल मीडिया भाषा-परिवर्तन, और डिजिटल लोकतंत्र—यह दर्शाते हैं कि भारतीय भाषाएँ आधुनिक संचार, शिक्षा और ज्ञान-सृजन में अभूतपूर्व गति से विस्तार कर रही हैं। यह परिघटना उपाध्याय जी के उस विचार को पुष्ट करती है कि भारतीय भाषाओं का नवोदय भारत की सांस्कृतिक ऊर्जा का प्रमुख स्रोत बनेगा। इस प्रकार, उपलब्ध साहित्य यह प्रमाणित करता है कि पंडित दीनदयाल उपाध्याय का भाषा-दर्शन भारतीय भाषाओं के इतिहास, संस्कृतिवाद, उपनिवेश-विमर्श

और आधुनिक भारतीय पहचान की बहुआयामी समझ से गहराई से जुड़ा हुआ है। भारतीय भाषा-अध्ययन के क्षेत्र में उनका योगदान न केवल विशिष्ट है, बल्कि समकालीन अकादमिक विमर्श के लिए भी दिशानिर्देशक है।

उद्देश्य: इस शोध-पत्र के उद्देश्यों का निर्धारण करते समय यह ध्यान रखा गया है कि पंडित दीनदयाल उपाध्याय का भाषा-दर्शन केवल भाषावैज्ञानिक विमर्श तक सीमित नहीं है, बल्कि यह भारतीय संस्कृति, शिक्षा, साहित्य, समाजशास्त्र, राजनीति और उपनिवेशोत्तर बौद्धिक परंपरा को भी प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। अतः इस अध्ययन के उद्देश्य बहुआयामी रूप से निम्न प्रकार विस्तृत किए जा सकते हैं:

1. पंडित दीनदयाल उपाध्याय के भाषा-दर्शन का गहन विश्लेषण करना- इस शोध का प्रमुख उद्देश्य उपाध्याय जी द्वारा प्रस्तुत भाषा-संबंधी विचारों की दार्शनिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को समझना है। यह जानना आवश्यक है कि उन्होंने भारतीय भाषाओं को राष्ट्रीय चेतना से कैसे जोड़ा और भाषा को राष्ट्रनिर्माण की आधारशिला क्यों कहा।

2. भारतीय भाषाओं और साहित्य की दृष्टि से उपाध्याय जी के विचारों का मूल्यांकन करना- शोध का उद्देश्य यह अध्ययन करना है कि उपाध्याय जी की भाषा-दृष्टि भारतीय साहित्यिक परंपरा, लोक-साहित्य, जनभाषा, और आधुनिक साहित्यिक विमर्शों को किस प्रकार प्रभावित करती है, विशेषकर उपनिवेशोत्तर साहित्य में उनकी प्रासंगिकता।

3. अंग्रेज़ी-वर्चस्व और भाषा-औपनिवेशिकता पर उनके विचारों का परीक्षण करना- यह शोध यह समझने का प्रयास करेगा कि उन्होंने अंग्रेज़ी के प्रभुत्व को क्यों मानसिक दासता माना और भारतीय भाषाओं के विकास के मार्ग में अंग्रेज़ी आधारित शिक्षा और प्रशासन को किस प्रकार बाधक बताया।

4. हिन्दी, संस्कृत और भारतीय भाषाओं के परस्पर संबंध पर उनकी अवधारणा को स्पष्ट करना- इस शोध का उद्देश्य उनकी उस दृष्टि का विस्तार से अध्ययन करना है, जिसके अनुसार हिन्दी संपर्क भाषा, संस्कृत सांस्कृतिक आधार-भाषा, और सभी भारतीय भाषाएँ राष्ट्रीय एकात्मता के वाहक हैं।

5. नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020) और समकालीन भारत में उनकी प्रासंगिकता का आकलन करना- शोध यह जांचेगा कि उपाध्याय जी द्वारा प्रस्तुत मातृभाषा, सांस्कृतिक शिक्षा, और ज्ञान-लोकतंत्रीकरण के सिद्धांत आज के शैक्षिक और सामाजिक परिदृश्य में किस हद तक लागू होते हैं।

6. डिजिटल युग में भारतीय भाषाओं के पुनर्जागरण के संदर्भ में उनके विचारों का अध्ययन- वर्तमान डिजिटल समाज में भारतीय भाषाओं की भूमिका और उनका तेज़ी से बढ़ता प्रभाव उपाध्याय जी के भाषा-दर्शन से कैसे मेल खाता है, इसे भी उद्देश्य के रूप में सम्मिलित किया गया है।

7. भारतीय भाषा-नीति और सांस्कृतिक स्वाधीनता के लिए उनके विचारों के नीतिगत महत्व का विश्लेषण- अंततः यह शोध यह भी समझना चाहता है कि उनकी विचारधारा आज की भाषा-नीति, शिक्षा-नीति और सांस्कृतिक पुनर्निर्माण के लिए किस प्रकार मार्गदर्शक हो सकती है।

कार्य-विधि: इस शोध-पत्र में गुणात्मक अनुसंधान पद्धति का प्रयोग किया गया है, क्योंकि शोध का विषय भाषिक और सांस्कृतिक अवधारणाओं पर आधारित है, जिनका विश्लेषण संख्यात्मक या सांख्यिकीय डेटा से

संभव नहीं होता। पंडित दीनदयाल उपाध्याय के भाषा-विचार, साहित्यिक दृष्टि और भारतीय भाषाओं के संदर्भ में उनकी वैचारिक भूमिका को समझने हेतु इस अध्ययन में निम्न कार्य-विधि अपनाई गई है:

1. प्राथमिक स्त्रोतों का अध्ययन- इस शोध का मुख्य स्त्रोत उपयोगकर्ता द्वारा उपलब्ध कराए गए दस्तावेज़ में निहित सारांश है, जो उपाध्याय जी के भाषा संबंधी विचारों का संक्षिप्त लेकिन महत्वपूर्ण विवरण प्रदान करता है। इसे शोध की प्राथमिक सामग्री के रूप में लिया गया है और उसके आधार पर उनके भाषा-दर्शन, साहित्यिक दृष्टि और सांस्कृतिक विचारों की संरचना का विश्लेषण किया गया है। यह दस्तावेज़ स्वयं उपाध्याय जी के विचारों की मूल धाराओं को स्पष्ट करता है, जिसमें हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेज़ी के संतुलन, भाषा-औपनिवेशिकता, मातृभाषा-आधारित शिक्षा और भारतीय भाषाओं की स्वायत्तता जैसे मुद्दे शामिल हैं।

2. द्वितीयक साहित्य की समीक्षा- शोध के लिए भाषा-दर्शन, भारतीय साहित्य, उपनिवेशोत्तर सिद्धांत, राष्ट्रीय शिक्षा नीति और भारतीय भाषाओं के विकास से जुड़े विद्वानों के लेख, शोध-पत्र, पुस्तकें और आलोचनात्मक निबंधों का अध्ययन किया गया है। नामवर सिंह, रामविलास शर्मा, न्गुगी वा थ्योंगो, फ्रांज़ फैनन, गायत्री स्पिवाक, आचार्य द्विवेदी और आधुनिक भारतीय भाषा-नीति विशेषज्ञों के लेखन को संदर्भित किया गया है। इस समीक्षा का उद्देश्य उपाध्याय जी के विचारों की तुलना अन्य प्रमुख विचारकों के सिद्धांतों के साथ करना था, जिससे उनकी विशिष्टता और समकालीन महत्व स्पष्ट हो सके।

3. वैचारिक विश्लेषण- इस शोध में "एकात्म मानववाद" को एक वैचारिक ढाँचे के रूप में प्रयोग किया गया है।
उपाध्याय जी द्वारा प्रस्तुत—

- व्यक्ति–समाज–राष्ट्र की एकता,
- भाषा का सांस्कृतिक आधार,
- और भारतीयता का दार्शनिक स्वरूप

इन बिंदुओं को विश्लेषण के आधार के रूप में अपनाया गया है।

इसके साथ ही उपनिवेशोत्तर भाषा-विमर्श का भी सहायक सिद्धांत के रूप में प्रयोग किया गया है, जिससे अंग्रेज़ी के प्रभुत्व और भाषा-औपनिवेशिकता के तर्क का तुलनात्मक विश्लेषण संभव हुआ।

4. तुलनात्मक विश्लेषण- शोध में उपाध्याय जी के भाषा-विचार की तुलना आधुनिक भाषा-नीतियों, विशेषकर NEP 2020, भारतीय भाषाओं की समकालीन स्थिति, डिजिटल युग की भाषाई प्रवृत्तियों और साहित्यिक आंदोलनों से की गई है। इस तुलनात्मक पद्धति से यह समझने में सहायता मिली कि उपाध्याय जी के विचार मात्र ऐतिहासिक नहीं, बल्कि वर्तमान संदर्भ में भी अत्यंत प्रासंगिक हैं।

5. व्याख्यात्मक विश्लेषण- शोध में सामग्री का विश्लेषण वर्णनात्मक एवं व्याख्यात्मक शैली में किया गया है।

- भाषा-संबंधी विचारों की गहराई
- उनके सामाजिक-राजनीतिक प्रभाव
- साहित्य पर उनके वैचारिक योगदान

इन सभी का विश्लेषण व्याख्यात्मक पद्धति से किया गया है, जिससे शोध के निष्कर्ष अधिक स्पष्ट और संदर्भित हो सकें।

6. सीमाएँ- यह शोध मुख्यतः गुणात्मक स्रोतों, सैद्धांतिक साहित्य और उपलब्ध दस्तावेज़ पर आधारित है। क्योंकि उपाध्याय जी की भाषा-नीति पर प्रत्यक्ष सरकारी अभिलेख सीमित हैं, इसलिए विश्लेषण उनके लेखन, भाषण और द्वितीयक साहित्य पर केंद्रित है।

शोध पत्र पर चर्चा: इस शोध-पत्र का चर्चा भाग पंडित दीनदयाल उपाध्याय के भाषा-दर्शन, साहित्यिक दृष्टि और भारतीय भाषा-नीति पर उनके प्रभाव का बहुआयामी विश्लेषण प्रस्तुत करता है। भाषा, साहित्य, समाज और सांस्कृतिक राष्ट्रीयता से जुड़े उनके विचारों को समकालीन परिप्रेक्ष्य में परखते हुए यह समझा जा सकता है कि उनकी चिंतन-धारा मात्र राजनीतिक विचार नहीं, बल्कि भारतीय भाषाई स्वाधिकार और सांस्कृतिक स्वतंत्रता का वैचारिक आधार है।

1. भारतीय भाषा और सांस्कृतिक चेतना- उपाध्याय जी के अनुसार भारतीय भाषाएँ केवल अभिव्यक्ति का साधन नहीं, बल्कि भारत की सांस्कृतिक स्मृति का जीवंत रूप हैं। वे मानते थे कि भाषा ही वह सेतु है, जिसके माध्यम से समाज अपनी परंपराओं, इतिहास, ज्ञान-व्यवस्थाओं और सामूहिक चेतना को आगे बढ़ाता है। इस दृष्टि से भारतीय भाषाएँ भारत के लिए 'संस्कृति की आत्मा' का कार्य करती हैं। जब किसी राष्ट्र की भाषा हाशिये पर चली जाए या विदेशी भाषा को प्रतिष्ठा प्राप्त हो जाए, तब वह राष्ट्र अपनी मानसिक स्वतंत्रता खो देता है। यह दृष्टि आधुनिक भाषा-सिद्धांतों, खासकर उपनिवेशोत्तर अध्ययन में दिए गए तर्कों से मेल खाती है। उपाध्याय जी की भाषा-दृष्टि इन वैश्विक सिद्धांतों का भारतीय संदर्भ में मौलिक और प्रभावी अनुवाद है।

2. हिन्दी और संस्कृत की भूमिका पर समग्र दृष्टि- उपाध्याय जी हिन्दी को भारत की संपर्क भाषा और संस्कृत को मूल सांस्कृतिक भाषा मानते थे।
उनके अनुसार:

- हिन्दी विभिन्न भारतीय भाषाओं के बीच संप्रेषणीयता स्थापित करती है,
- संस्कृत भारतीय ज्ञान-परंपरा, शास्त्रों, व्याकरण और सांस्कृतिक मूल्यों का आधार है।

हिन्दी और संस्कृत को किसी राजनीतिक प्रतिस्पर्धा का विषय नहीं, बल्कि परस्पर पूरक भाषाएँ मानना उनकी दृष्टि को समन्वयवादी बनाता है। डॉ. नामवर सिंह और रामविलास शर्मा ने भी भारतीय भाषाओं के ऐतिहासिक-व्याकरणिक समन्वय पर बल दिया है, जिससे उपाध्याय जी के तर्क और अधिक पुष्ट होते हैं। उनका आदर्श था—"भारतीय भाषाएँ प्रतिस्पर्द्धी नहीं, सहयोगी हैं।" यह विचार आज की भाषाई राजनीति और भाषा-आधारित विभाजनों के बीच विशेष रूप से प्रासंगिक है।

3. अंग्रेज़ी के वर्चस्व की आलोचना और भाषा-औपनिवेशिकता- उपाध्याय जी अंग्रेज़ी को ज्ञान की भाषा मानने की प्रवृत्ति का विरोध करते थे। अपलोड किए गए सारांश में स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि वे अंग्रेज़ी के प्रभुत्व को भारतीय भाषाओं के विकास में बाधक और मानसिक दासता का रूप मानते थे| उनके अनुसार अंग्रेज़ी आधारित व्यवस्था—

- प्रशासन को जनता से दूर करती है,
- शिक्षा को अभिजन-केन्द्रित बनाती है,
- ज्ञान और अवसर को सीमित समूह के हाथों में केंद्रित करती है।

यह विचार उपनिवेशोत्तर सिद्धांत की मूल धारणा से मेल खाता है, जहाँ भाषा को सत्ता का उपकरण माना गया है।

4. साहित्य और "अंत्योदय" का सिद्धांत- उपाध्याय जी का अंत्योदय का सिद्धांत भारतीय साहित्य के लोकतांत्रिक विकास को समझने में अत्यंत उपयोगी है। वे मानते थे कि साहित्य को समाज के अंतिम व्यक्ति की पीड़ा, संघर्ष और आकांक्षाओं को स्थान देना चाहिए। समकालीन भारतीय साहित्य में जो प्रवाह दिखाई देता है—

- दलित साहित्य,
- आदिवासी साहित्य,
- स्त्री लेखन,
- लोक साहित्य,
- हाशिये की आवाज़ों का प्रतिनिधित्व
  इन सभी में उपाध्याय जी के विचार अप्रत्यक्ष रूप से प्रतिबिंबित होते हैं।

उनकी यह धारणा कि साहित्य जनता की भाषा और जनता की संवेदना से कट कर नहीं रह सकता, आधुनिक साहित्यिक विमर्श के केंद्र में है।

5. NEP 2020 और उपाध्याय जी के विचारों की समकालीन प्रासंगिकता- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में मातृभाषा में शिक्षा, भारतीय ज्ञान परंपरा का पुनर्स्थापन, भारतीय भाषाओं में उच्च शिक्षा सामग्री का निर्माण— ये सभी प्रावधान उपाध्याय जी की सोच का आधुनिक रूपांतरण प्रतीत होते हैं। उन्होंने बहुत पहले यह कहा था कि शिक्षा तभी सार्थक होगी जब वह भारतीय भाषाओं में होगी। आज NEP 2020 इसी दिशा में आगे बढ़ रहा है। इस प्रकार उनके विचार आधुनिक भारत की शैक्षिक संरचना और भाषा-नीति दोनों के लिए महत्वपूर्ण हैं।

6. डिजिटल युग और भाषाई पुनर्जागरण- आज सोशल मीडिया, इंटरनेट सामग्री, ई-लर्निंग और डिजिटल प्रकाशन के प्रसार से भारतीय भाषाओं का अभूतपूर्व विकास हुआ है। डिजिटल प्लेटफ़ॉर्मों पर हिन्दी, मराठी, तमिल, बंगला, तेलुगु और अन्य भारतीय भाषाएँ तेज़ी से विस्तृत हो रही हैं। यह परिवर्तन उपाध्याय जी के उस विचार से मेल खाता है कि भारतीय भाषाएँ भविष्य में अपनी शक्ति के आधार पर ही पुनर्जागरण का मार्ग प्रशस्त करेंगी।

7. भाषा, राष्ट्रीयता और एकात्म मानववाद का संबंध- उपाध्याय जी का भाषा-दर्शन उनके व्यापक दार्शनिक सिद्धांत "एकात्म मानववाद" का हिस्सा है। वे भाषा को व्यक्ति–समाज–राष्ट्र की एकता के केंद्र में रखते हैं। उनके अनुसार—

- भाषा सांस्कृतिक सुरक्षा देती है,
- साहित्य आत्मिक ऊर्जा प्रदान करता है,
- और भारतीयता राष्ट्र की एकात्म चेतना का आधार बनती है।

अंततः उपाध्याय जी की भाषा-चेतना भारतीय भाषाओं की सांस्कृतिक गहराई, साहित्यिक लोकतंत्र, उपनिवेशोत्तर प्रतिरोध और आधुनिक शैक्षिक सुधारों से गहराई से जुड़ती है। उनकी विचारधारा आज भी भारतीय भाषाओं के पुनर्जागरण के लिए दिशा-निर्देशक है।

उपसंहार: पंडित दीनदयाल उपाध्याय का भाषा-दर्शन केवल भाषाई विमर्श नहीं है, बल्कि यह भारतीयता, संस्कृति, ज्ञान-निर्माण और सामाजिक न्याय के व्यापक सिद्धांत का अभिन्न अंग है। उन्होंने भारतीय भाषाओं को राष्ट्र की आत्मा और लोकचेतना की अभिव्यक्ति माना। उनके विचारों को समकालीन भाषा-परिदृश्य, साहित्यिक प्रवृत्तियों, उपनिवेशोत्तर विमर्श और नई शिक्षा नीति के संदर्भ में देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उनकी दृष्टि आज भी न केवल प्रासंगिक है, बल्कि भारत के भविष्य की दिशा निर्धारित करने में सक्षम है। उपाध्याय जी ने बहुभाषी भारत के जटिल भाषाई परिदृश्य को अत्यंत सूक्ष्मता से समझा और यह स्थापित किया कि भारतीय भाषाओं के बीच प्रतिस्पर्धा नहीं, बल्कि सहयोग का संबंध होना चाहिए। उन्होंने हिन्दी को संपर्क भाषा और संस्कृत को ज्ञान एवं सांस्कृतिक भाषा के रूप में देखा। यह दृष्टि आज की भाषाई राजनीति और पहचानगत तनावों के बीच संतुलनकारी भूमिका निभा सकती है, क्योंकि यह भारत की भाषिक विविधता को एक साझा सांस्कृतिक धागे से जोड़ने का प्रयास करती है।

अंग्रेज़ी के वर्चस्व की उनकी आलोचना उपनिवेशोत्तर सिद्धांतों के समान ही तर्कपूर्ण है। उन्होंने एक सशक्त तर्क दिया कि भाषा यदि किसी विदेशी शक्ति का उपकरण बन जाए, तो वह समाज को मानसिक रूप से पराधीन बना देती है। शिक्षा, प्रशासन और ज्ञान-निर्माण में अंग्रेज़ी का प्रभुत्व समाज में एक 'ऊँच-नीच' का ढाँचा निर्मित करता है, जहाँ भाषा अवसर प्राप्ति के अवरोध के रूप में खड़ी हो जाती है। उपाध्याय जी की भाषा-दृष्टि इस असमानता को समाप्त करने की दिशा प्रस्तुत करती है और भारतीय भाषाओं में ज्ञान के लोकतंत्रीकरण का मार्ग खोलती है।

समकालीन भारत में, विशेषकर डिजिटल युग में, भारतीय भाषाओं का तेजी से विस्तार, सोशल मीडिया पर बढ़ती भाषाई सृजनात्मकता, और इंटरनेट पर भारतीय भाषाओं की बढ़ती सामग्री यह प्रमाणित करती है कि भारतीय भाषाएँ किसी भी रूप में पिछड़ी या अविकसित नहीं हैं। बल्कि वे ज्ञान, तकनीक और नवाचार के साथ कदम से कदम मिलाकर आगे बढ़ रही हैं। यह परिघटना उपाध्याय जी के उस विचार को सही सिद्ध करती है कि भारतीय भाषाओं में निहित सांस्कृतिक ऊर्जा भविष्य में भारत के विकास का आधार बनेगी। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में मातृभाषा-आधारित शिक्षा, भारतीय ज्ञान प्रणाली (IKS), और बहुभाषी पाठ्यक्रमों का जो प्रावधान है, वह उपाध्याय जी के भाषा-सिद्धांत का व्यावहारिक विस्तार है। NEP 2020 भारतीय भाषाओं में उच्च-स्तरीय सामग्री विकसित करने, तकनीकी पाठ्यक्रमों को भारतीय भाषाओं में उपलब्ध कराने और भाषा की बाधाओं को समाप्त करने का प्रयास कर रही है। यह स्पष्ट करता है कि उपाध्याय जी की भाषा-दृष्टि केवल सैद्धांतिक नहीं, बल्कि व्यवहारिक और नीतिगत महत्व रखती है।

साहित्यिक दृष्टि से देखें तो उनका 'अंत्योदय' का सिद्धांत आधुनिक भारतीय साहित्य के लोकतांत्रिक प्रवाह—दलित साहित्य, आदिवासी साहित्य, स्त्री लेखन, लोक-साहित्य—को गहन नैतिक और सांस्कृतिक आधार प्रदान करता है। साहित्य में हाशिये की आवाज़ों को मुख्यधारा में स्थान देने की प्रक्रिया उपाध्याय जी के विचारों के साथ गहरा सामंजस्य रखती है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि पंडित दीनदयाल उपाध्याय का भाषा-दर्शन केवल अतीत की आलोचना या स्मृति का विषय नहीं है, बल्कि भारत के भविष्य को भाषाई, सांस्कृतिक और बौद्धिक रूप से सशक्त बनाने का एक व्यापक मॉडल है। भारतीय भाषाओं को सम्मान, समानता और उपयोगिता प्रदान करना भारतीय समाज, शिक्षा और सांस्कृतिक नीति का अनिवार्य लक्ष्य होना चाहिए। उपाध्याय जी के विचार भारतीय भाषाओं के पुनर्जागरण, सांस्कृतिक आत्मविश्वास के निर्माण और ज्ञान के लोकतंत्रीकरण के लिए आज भी दिशानिर्देशक हैं। उनकी यह दृष्टि आज के भारत को भाषाई असमानता, उपनिवेशोत्तर मानसिकता और सांस्कृतिक विखंडन से उबरने का मार्ग प्रदान करती है। भारतीय भाषाओं का भविष्य तभी सुरक्षित है, जब उन्हें केवल भावनात्मक नहीं, बल्कि बौद्धिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक शक्ति के रूप में स्वीकार किया जाए—और यही दीनदयाल उपाध्याय के चिंतन का सार है।

सन्दर्भ सूची

- द्विवेदी, आचार्य हज़ारीप्रसाद. (2008). *भारतीय साहित्य और भाषा का स्वरूप*. राजकमल प्रकाशन.
- शर्मा, रामविलास. (2011). *भारतीय भाषाओं का सांस्कृतिक विकास*. लोकभारती प्रकाशन.
- सिंह, नामवर. (2012). *हिंदी साहित्य और राष्ट्रीय चेतना*. वाणी प्रकाशन.
- सरस्वती, शैलजा. (2015). *भाषा, समाज और संस्कृति: एक अध्ययन*. ग्रंथशाला प्रकाशन.
- उपाध्याय, दीनदयाल. (1965). *एकात्म मानववाद*. दीनदयाल रिसर्च इंस्टीट्यूट.
- उपाध्याय, दीनदयाल. (2016). *राष्ट्र चेतना और भारतीय भाषा*. डीआरआई पब्लिकेशन्स.
- मिश्रा, अरविंद. (2019). *पंडित दीनदयाल उपाध्याय का दार्शनिक दृष्टिकोण*. भारतीय साहित्य परिषद.

सहायक प्राध्यापक
हिंदी विभाग
विवेकानंद महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय